"احسن البیان" فی تفسیر معانی القرآن

(باللغة الهندية)

व्याख्या

अहसनुल बयान

भाग-१

अनुवाद

मौलाना मोहम्मद जूनागढ़ी

व्याख्या

हाफ़िज़ सलाहुद्दीन यूसुफ़

हिन्दी अनुवाद

सैय्यद ज़ाहिद अ़ली

अज़ीज़ुल हक़ उमरी

मोहम्मद ताहिर सलफ़ी

दारूस्सलाम

प्रकाशक एवं मुद्रक

سُورَةُ الفَاتِحَة सूरतुल फ़ातिहा-१

सूरः *फ़ातिहा*[1] मक्का में अवतरित हुई[2] इस में सात आयतें हैं ।[3]

بِسۡمِ ٱللَّهِ ٱلرَّحۡمَٰنِ ٱلرَّحِيمِ ①

(१) अल्लाह दयावान करूणामयी के नाम से प्रारम्भ करता हूँ ।[4]

ٱلۡحَمۡدُ لِلَّهِ رَبِّ ٱلۡعَٰلَمِينَ ②

(२) सब प्रशंसा![5] अल्लाह सर्वलोक के पालनहार के लिये है[6]

ٱلرَّحۡمَٰنِ ٱلرَّحِيمِ ③

(३) बड़ा दयावान अति करूणामयी है[7]

مَٰلِكِ يَوۡمِ ٱلدِّينِ ④

(४) बदले के दिन (क़यामत) का स्वामी है[8]

إِيَّاكَ نَعۡبُدُ وَإِيَّاكَ نَسۡتَعِينُ ⑤

(५) हम तेरी ही इबादत (उपासना) करते तथा तुझही से सहायता माँगते हैं[9]

ٱهۡدِنَا ٱلصِّرَٰطَ ٱلۡمُسۡتَقِيمَ ⑥

(६) हमें सीधा (सत्य) मार्ग दिखा[10]

صِرَٰطَ ٱلَّذِينَ أَنۡعَمۡتَ عَلَيۡهِمۡ غَيۡرِ ٱلۡمَغۡضُوبِ عَلَيۡهِمۡ وَلَا ٱلضَّآلِّينَ ⑦

(७) उन लोगों का मार्ग जिन पर तूने उपकार किया[11] उनका नहीं जिन पर प्रकोप हुआ तथा न गुमराहों का ।[12]

---

(1) सूरः *फ़ातिहा* पवित्र क़ुरआन की प्रथम सूरः है । जिसका हदीसों में बड़ा महत्व है । فاتحة *फ़ातिहा* का अर्थ आरम्भ है इसलिए इसे الفاتحة *अलफ़ातिहा* अर्थात *फ़ातिहतुल किताब* कहा जाता है इसके अन्य भी अनेक नाम हदीसों से प्रमाणित हैं - जैसे *उम्मुल क़ुरआन, अस्सबउल मसानी, अल क़ुरआनुल अज़ीम,* अर्रुकियः الرقية (मंत्र) जैसे एक सहाबी ने एक बिच्छू के डसे हुए को इससे मंत्र किया तो वह स्वस्थ हो गया । नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने फ़रमाया तुझे कैसे ज्ञान हुआ कि यह मंत्र है ! तथा अन्य नाम हैं । इसका एक महत्वपूर्ण नाम الصلاة *(अस्सलात)* भी है, जैसा कि एक हदीस क़ुदसी में है, अल्लाह तआला ने फ़रमाया :

«قَسَمْتُ الصَّلَاةَ بَيْنِي وَبَيْنَ عَبْدِي».

मैंने सलात (नमाज़) को अपने तथा अपने बंदे के बीच विभाजित कर दिया है ।

(अलहदीस, सहीह मुस्लिम, किताबुस सलात)

अभिप्राय सूरः *फ़ातिहा* है । जिसका आधा भाग अल्लाह की स्तुति - प्रशंसा तथा उसकी दयालुता, पालन-पोषण एवं न्याय तथा राज्य के वर्णन में है । तथा आधे भाग में प्रार्थना, विनय है जो बन्दा अल्लाह से करता है । इस हदीस में सूरः *फ़ातिहा* को "नमाज़" से व्यंजित किया है । जिससे विदित होता है कि नमाज़ में इसका पढ़ना अनिवार्य है । जैसा कि नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* के कथनो में इसे भलि-भांति स्पष्ट कर दिया गया है । फ़रमाया :

«لَا صَلَاةَ لِمَنْ لَمْ يَقْرَأْ بِفَاتِحَةِ الْكِتَابِ».

उस व्यक्ति की नमाज़ नहीं जिसने सूरः फ़ातिहा नहीं पढ़ी ।

(सहीह बुखारी-सहीह मुस्लिम)

इस हदीस में مـن (जो व्यक्ति) शब्द साधारण है जो प्रत्येक नमाज़ी को समिलित है । अकेला हो अथवा इमाम के पीछे *मुक्तदी* (अनुयायी) *सिर्री* (धीमें स्वर से) नमाज़ हो अथवा *जहरी* (उच्च स्वर की) नमाज़ । अनिवार्य (फ़र्ज़) नमाज़ हो अथवा नफ़्ल (स्वच्छा से) प्रत्येक नमाज़ी के लिये सूरः *फ़ातिहा* पढ़ना अनिवार्य है । इसकी साधारणता का समर्थन उस हदीस से होता है जिसमें आता है कि एक बार फ़ज्र की नमाज़ में कुछ सहाबा भी रसूलल्लाह *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* के साथ कुरआन पढ़ते रहे जिसके कारण आप का पढ़ना बोझल हो गया । नमाज़ समाप्त होने पर आपने प्रश्न किया कि तुम भी साथ में पढ़ते रहे हो ? उन्होंने स्वीकार किया, तो आपने फ़रमाया :

«لَا تَفْعَلُوا إِلَّا بِأُمِّ الْقُرْآنِ؛ فَإِنَّهُ لَا صَلوٰةَ لِمَنْ لَمْ يَقْرَأْ بِهَا».

तुम ऐसा न करो (अर्थात साथ-साथ मत पढ़ा करो) हाँ सूरः *फ़ातिहा* अवश्य पढ़ा करो, क्योंकि उसके पढ़े बिना नमाज़ नहीं होती (अबूदाऊद, नसाई, तिर्मिज़ी)

इस प्रकार अबू हुरैरा ने कहा कि नबी *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने फ़रमाया :

«مَنْ صَلَّى صَلوٰةً لَمْ يَقْرَأْ فِيهَا بِأُمِّ الْقُرْآنِ، فَهِيَ خِدَاجٌ - ثَلَاثًا - غَيْرُ تَمَامٍ».

जिसने बिना सूरः फ़ातिहा के नमाज़ पढ़ी वह अधूरी है तीन बार आप ने फ़रमाया ।

अबु हुरैरा से कहा गया :

(إِنَّا نَكُوْنُ وَرَآءَ الإِمَامِ).

इमाम के पीछे भी हम नमाज पढ़ते हैं,

उस समय हम क्या करें ? अबुहुरैरा ने कहा :

(اِقْرَأْ بِهَا فِيْ نَفْسِكَ).

इमाम के पीछे तुम सूरः फ़ातिहा अपने मन में पढ़ो। (सहीह मुस्लिम)

उपरोक्त दोनों हदीसों से स्पष्ट हुआ कि क़ुरआन मजीद में जो आता है।

﴿وَإِذَا قُرِئَ ٱلْقُرْءَانُ فَٱسْتَمِعُوا۟ لَهُۥ وَأَنصِتُوا۟﴾

जब क़ुरआन पढ़ा जाये तो सुनो तथा चुप रहो,

(अल आराफ, २०४)

तथा हदीस «وَإِذَا قَرَأَ فَأَنْصِتُوا». (यदि सहीह हो) जब इमाम पढ़े तो चुप रहो, का अभिप्राय यह है कि जहरी नमाजों में *मुक्तदी* सूरः *फ़ातिहा* के सिवा शेष *किराअत* चुप होकर सुने, इमाम के साथ न पढ़े। अथवा इमाम सूरः *फ़ातिहा* की आयतें रूक-रूक कर पढ़े ताकि *मुक्तदी* भी सहीह हदीसों के अनुसार सूरः *फ़ातिहा* पढ़ ले, अथवा इमाम सूरः *फ़ातिहा* के बाद इतना रूके कि *मुक्तदी* भी सूरः *फ़ातिहा* पढ़ ले। इस प्रकार आयत तथा हदीसों में الحمد لله कोई प्रतिकूलता नहीं रहती, दोनों का पालन हो जाता है, जब की सूरः *फ़ातिहा* से रोकने से यह बात सिद्ध होती है कि क़ुरआन तथा सहीह हदीसों में प्रतिकूलता है । तथा दोनों में से एक ही का पालन हो सकता है एक समय में दोनों का पालन संभव नहीं इस विषय में विवरण के लिये देखिए, *तहकीकुल कलाम*, संकलन मौलाना अब्दुर्रहमान मुबारक पूरी, *तौजीहुल कलाम* मौलाना इरशादुल हक़ असरी आदि। तथा देखिये सूरः *आराफ़* आयत नः २०४ का भाष्य।

(2) यह सूरः मक्की है। मक्की या मदनी का अभिप्राय है जो सूरतें हिजरत (१३ नबूवत) से पहले अवतरित हुई वह मक्की हैं चाहे उनका अवतरण मक्का में हुआ अथवा उनके आसपास । मदनी वह सूरतें हैं जो हिजरत के बाद अवतरित हुई चाहे मदीना अथवा उसके सीमावर्ती क्षेत्रों में अवतरित हुई अथवा उनसे दूर। यहाँ तक कि मक्का तथा उसके आसपास ही क्यों न अवतरित हुई हो।

(3) بسم الله के विषय में मतभेद है कि यह प्रत्येक सूरः की आयत है अथवा प्रत्येक सूरः की आयत का अंश अथवा सूरः *फ़ातिहा* की एक आयत है अथवा किसी भी सूरः की स्थाई आयत नहीं है। इसे मात्र प्रत्येक सूरः को अलग करने के लिये सूरतों के आरम्भ में

लिखा जाता है। मक्का तथा कूफ़ा के क़ारियों ने इसे सूरः *फ़ातिहा* सहित प्रत्येक सूरः की आयत माना है। जबकि मदीना, बसरा तथा शाम के क़ारियों ने इसे किसी भी आयत की सूरत नहीं माना है, सिवाय सूरः नमल आयत ३० के, कि इसमें सर्वसम्मति से بسم الله उसका अंश है। इसी प्रकार *जहरी* नमाजों में इसके उच्च स्वर में पढ़नें में भी मतभेद है कुछ उच्च स्वर में पढ़नें को मानते हैं तथा कुछ धीमें स्वर में (फतहुल कदीर) अधिकतर विद्वानों ने धीमी आवाज से पढ़नें को प्रधानता दी है फिर भी उच्च स्वर से पढ़ना भी उचित (जायज) है।

(4) بسم الله के आरम्भ में اقرأ अथवा ابدأ अथवा اتلو लुप्त है अर्थात अल्लाह के नाम से पढ़ता अथवा आरम्भ करता अथवा पाठ करता हूँ, प्रत्येक महत्वपूर्ण काम के करते समय بسم الله पढ़नें पर बल दिया गया है। इसलिये आदेश दिया गया कि खाने - वध, *वज़ू* तथा संभोग से पहले *बिस्मिल्लाह* पढ़ो फिर भी पवित्र क़ुरआन पढ़नें के समय أعوذ بالله من الشيطان الرجيم भी पढ़ना अनिवार्य है।

﴿فَإِذَا قَرَأْتَ ٱلْقُرْءَانَ فَٱسْتَعِذْ بِٱللَّهِ مِنَ ٱلشَّيْطَٰنِ ٱلرَّجِيمِ﴾

जब पवित्र क़ुरआन पढ़नें लगो तो धिक्कारे शैतान से अल्लाह की शरण माँगो।

(अन्नहल, ९६)

(5) الحمد में ال (*अल*) सर्व अथवा विशेष के अर्थ में है, अर्थात सभी प्रशंसाऐं अल्लाह के लिये हैं अथवा उसके लिये विशेष हैं, क्योंकि प्रशंसा का वास्तव में पात्र तथा योग्य मात्र अल्लाह तआला ही है। किसी में कोई अच्छाई एवं अर्हता है तो वह भी अल्लाह की पैदा की हुई है। अतः स्तुति तथा प्रशंसा का पात्र भी वही है। अल्लाह (الله) यह अल्लाह की वाचक संज्ञा है इस का प्रयोग किसी अन्य के लिये वैध नहीं। الحمد لله (*अलहम्दु लिल्लाहे*) यह कृतज्ञता व्यक्त करनें का शब्द है जिसकी बड़ी प्रधानता हदीसों में आई है, एक हदीस में لا إله إلا الله (*ला ईलाहा इल्लल्लाह*) को सर्वोतम स्मरण तथा الحمد لله (*अलहमदुलिल्लाह*) को सर्वोतम प्रार्थना कहा गया है (त्रिमिजी, नसाई आदि) सही मुस्लिम तथा नसाई की हदीस में है। الحمد لله تملأ الميزان - الحمد मीजान (तुला) को भर देता है इसीलिए एक हदीस में आता है अल्लाह इसको पसद करता है कि प्रत्येक खाने तथा पीने पर बंदा अल्लाह की हम्द (कृतज्ञता व्यक्त) करे।

(6) رب (*रब्ब,*) अल्लाह के शुभ नामों में से एक नाम है। जिसका अर्थ है प्रत्येक वस्तु को पैदा करके उसकी आवश्यकताओं को सुलभ कराने वाला तथा उसे पूर्ति तक पहुँचाने वाला । इसका प्रयोग बिना संबंध के किसी के लिये वैध (जायज) नहीं। عالمين *आलमीन* عالم *आलम* (लोक) का बहुबचन है वैसे तो पूरी सृष्टि के संयोग को *आलम* कहा जाता है, इसलिए इसका बहुबचन नहीं लाया जाता, किन्तु उसके पूर्ण पालनहार होनें को प्रकाशित

करने के लिये *आलम* का भी बहुवचन लाया गया है। जिससे अभिप्रेत सृष्टि की अलग-अलग जातियाँ हैं जैसे जिन्न का *आलम*, मानव जाति का *आलम*, फ़रिश्तों का *आलम*, जीव-जन्तु का *आलम*, पक्षियों का आलम आदि। इन सब की आवश्यकताऐं एक-दूसरे से भिन्न हैं किन्तु رب العالمين (समस्त जगत का प्रभु) सबकी आवश्यकताऐं उनकी स्थिति, स्थान, उनकी प्रकृति तथा शरीर के अनुसार उपलब्ध कराता है।

(7) رحمن *(रहमान)* फ़ालान के वजन पर तथा رحيم *(रहीम)* फ़ईल के वजन पर है दोनों अत्युक्ति के रूप हैं। जिनमें अधिकता तथा नित्यता का अर्थ पाया जाता है, अर्थात अल्लाह तआला अति दयानिधि है। उसका यह गुण उसके अन्य शुभगुणों की भाँति नित्य है कुछ विद्वान कहतें हैं कि *रहमान* में *रहीम* की अपेक्षा अधिक अत्युक्ति है इसीलिए رحمن الدنيا والآخرة कहा जाता है। दुनियाँ में उसकी दया सर्वसाधारण के लिये है। जिससे बिना बिशेषता के काफ़िर तथा मुसलमान सब लाभान्वित हो रहे हैं। तथा परलोक में वह केवल *रहीम* होगा अर्थात उसकी दया मात्र ईमानवालों के लिये विशेष होगी।

(8) दुनिया में भी यद्यपि कर्म दण्ड का क्रम एक सीमा तक प्रचलित रहता है फिर भी इसका पूर्ण अविर्भाव परलोक में होगा तथा अल्लाह तआला प्रत्येक को उसके अच्छे तथा बुरे कर्म का पूरा बदला अथवा दण्ड देगा इसी प्रकार संसार में कई लोगों के पास साधनों के आधीन अधिकार होते हैं परन्तु परलोक में सभी अधिकार का स्वामी मात्र तथा मात्र परमेश्वर (अल्लाह तआला) ही होगा। अल्लाह उस दिन फ़रमायेगा :

لمن الملك اليوم (आज किस का राज्य है?) फिर वही उत्तर देगा। لله الواحد القهار (केवल एक प्रभुत्वशाली अल्लाह के लिये)

﴿ يَوْمَ لَا تَمْلِكُ نَفْسٌ لِّنَفْسٍ شَيْـًٔا وَالْأَمْرُ يَوْمَئِذٍ لِّلَّهِ ﴾

उस दिन कोई व्यक्ति किसी के लिये अधिकार नहीं रखेगा सारा मामला अल्लाह के हाथों में होगा। *(अल इंफ़तार)*

(9) इबादत का अर्थ है किसी की प्रसन्नता के लिये अति विनम्रता विवशता तथा विनय का प्रदर्शन, तथा इब्ने कसीर के कथानुसार धर्म में पूर्ण प्रेम, विनम्रता तथा भय के संग्रह का नाम है अर्थात जिसके साथ प्रेम भी हो तथा उसकी शक्ति के आगे लाचारी तथा विवशता का प्रदर्शन भी हो, तथा साधनों अथवा अप्रत्यक्ष साधन के उसकी पकड़ का भय भी हो। सीधा वाक्य نعبدك و نستعينك है (हम तेरी इबादत करते हैं तथा तुझसे सहायता माँगते हैं) परन्तु अल्लाह ने यहाँ दूसरे कारक को क्रिया से पहले करके ﴿ إِيَّاكَ نَعْبُدُ وَإِيَّاكَ نَسْتَعِينُ ﴾ फ़रमाया। उद्देश्य विशेषता पैदा करना है, अर्थात हम तेरी ही इबादत करते तथा तुझही से सहायता चाहते है। न अराधना अल्लाह के सिवा किसी और

की वैध है न सहायता ही किसी से माँगनी जायेज (मान्य) है। इन शब्दो से *शिर्क* का द्वार बन्द कर दिया गया है, परन्तु जिन के दिल में *शिर्क* का रोग घुस गया है वह बिना साधन तथा साधना हानि सहायता चाहने के अंतर की अंदेखी करके जनता को भ्रम में डाल देते हैं तथा कहते हैं देखो हम रोगी होते हैं तो डाक्टर से सहायता लेते हैं, पत्नी से सहायता चाहते हैं, ड्राईवर (चालक) तथा अन्य लोगों से सहायता लेते हैं। इस प्रकार वह यह विश्वास दिलाते हैं कि अल्लाह के सिवा दूसरों से सहायता माँगना वैध है हालांकि साधना हानि एक-दूसरे से सहायता चाहना और करना *शिर्क* नहीं है। यह तो अल्लाह की बनाई व्यस्था है। जिसमें सारे काम प्रत्यक्ष साधनों के अनुकूल ही होते हैं। यहाँ तक की अम्बिया भी इंसानों की सहायता प्राप्त करते हैं, ईशदूत ईसा *(अलैहिस्सलाम)* ने फ़रमाया :

﴿ مَنْ أَنصَارِيٓ إِلَى ٱللَّهِ ﴾

"अल्लाह के धर्म के लिये कौन मेरा सहायक है" *(अस् सफ्फ)*

तथा अल्लाह ने ईमान वालों से फ़रमाया .

﴿ وَتَعَاوَنُوا۟ عَلَى ٱلْبِرِّ وَٱلتَّقْوَىٰ ﴾

"पुण्य तथा सयंम के कामों पर एक-दूसरे की सहायता करो" *(अल-मायेदा, २)*

प्रत्यक्ष है कि यह परस्पर सहायता न निषेध है, न *शिर्क* बल्कि अभीष्ट एवं प्रशंसीय है। इसका परिभाषित शिर्क से क्या सम्बन्ध ? *शिर्क* तो यह है कि ऐसे व्यक्ति से सहायता माँगी जाये जो जाहिरी साधनों को देखते हुए सहायता नहीं कर सकता जैसे किसी मरे को सहायता के लिये पुकारना उसे दु:ख हारी तथा कार्यक्षम समझना, उसे हानि कर तथा लाभदायक मानना, दूर तथा समीपस्थ प्रत्येक की गुहार सुनने की क्षमता से युक्त स्वीकार करना। इस का नाम है बिना (उपरी) साधनों द्वारा सहायता चाहना, तथा जैसे दैवी गुणों से युक्त मानना, इसी का नाम *शिर्क* है जो अवलिया (धर्मात्माओं) के प्रेम के नाम पर मुसलमान देशों में व्याप्त है। أعاذنا الله منه